International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज की भूमिका

सचिन
शोधार्थी, (इतिहास विषय) सामाजिक विज्ञान विभाग बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर रोहतक (Reg. No = 23-BMU-7237)
Mail id sachinsiwach@498@gmail.com

डॉ. राजबीर सिंह गुलिया
प्रोफेसर, (इतिहास विषय) सामाजिक विज्ञान विभाग बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर रोहतक

सार

आर्य समाज भारतीय समाज–सुधार आंदोलन का एक महत्वपूर्ण स्तंभ रहा है, जिसने शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक और दूरगामी योगदान दिया। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा 1875 ई. में स्थापित आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य वैदिक मूल्यों पर आधारित समाज का निर्माण करना था, जिसमें शिक्षा को सामाजिक जागरण और राष्ट्रीय उत्थान का प्रमुख साधन माना गया। आर्य समाज ने पारंपरिक, रूढ़िवादी और संकीर्ण शैक्षिक व्यवस्था का विरोध करते हुए आधुनिक, वैज्ञानिक एवं नैतिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया। इस आंदोलन ने स्त्री शिक्षा, दलित एवं वंचित वर्गों की शिक्षा, तथा सर्वसुलभ शिक्षा के प्रसार में अग्रणी भूमिका निभाई। डी.ए.वी. (दयानंद एंग्लो–वैदिक) विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की स्थापना आर्य समाज की शैक्षिक दृष्टि का ठोस उदाहरण है, जहाँ वैदिक संस्कृति और आधुनिक ज्ञान का समन्वय किया गया। इन शिक्षण संस्थानों ने राष्ट्रीय चेतना, नैतिक मूल्यों, अनुशासन और चरित्र निर्माण पर विशेष बल दिया। प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज की भूमिका का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है, जिसमें इसके शैक्षिक दर्शन, संस्थागत योगदान तथा भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर पड़े प्रभावों को स्पष्ट किया गया है। यह अध्ययन दर्शाता है कि आर्य समाज का शैक्षिक आंदोलन न केवल सामाजिक सुधार का माध्यम बना, बल्कि आधुनिक भारत की शैक्षिक संरचना को दिशा देने में भी सहायक सिद्ध हुआ।

मुख्य शब्द: आर्य समाज, शिक्षा, स्वामी दयानंद सरस्वती, डी.ए.वी. संस्थान, सामाजिक सुधार, स्त्री शिक्षा, वैदिक मूल्य, आधुनिक शिक्षा

प्रस्तावना

शिक्षा साहित्य और ज्ञान के क्षेत्रों में आर्यसमाज का क्रियाकलाप अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में आर्यसमाज द्वारा जिन शिक्षण संस्थाओं का संचालन किया जा रहा है उनकी संख्या लगभग दो हजार से भी अधिक है। ये शिक्षण संस्थाएं केवल भारत में ही नहीं परन्तु विदेशों जैसे– मारीशस, केन्या, फिजी, सुरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, ट्रिनिडाड आदि राज्यों में भी विद्यमान है। आर्य समाज की इन शिक्षण संस्थाओं की अपनी कुछ विशेषताएं है। इनकी स्थापना कुछ

निश्चित आदर्शों और उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गयी है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बालकों और बालिकाओं की शिक्षा तथा पठन पाठन के सम्बन्ध में जिन मन्तव्यों का प्रतिपादन किया था, आर्य समाज का प्रयत्न रहा है कि उन्हें क्रियान्वित किया जाए और शिक्षण संस्थाओं का संचालन उन्ही के अनुसार किया जाए। सामयिक आवश्यकताओं को परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए उन मन्तव्यों को चाहे पूर्ण रूप से क्रियान्वित न किया जा सका हो, पर यह स्वीकार करना होगा कि, आर्य समाज द्वारा संचालित प्रायः सभी शिक्षण संस्थाओं का वातावरण वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के अनुरूप है और उनमें यह प्रयत्न किया जाता है कि बालक–बालिकाएं सदाचारमय जीवन और नैतिक आदर्शों को अपने सम्मुख रखे और वैदिक धर्म के मूल तत्वों से भी वे परिचित हो जाए। ऐसे अनेक शिक्षणालय भी आर्य समाज द्वारा स्थापित है, जिनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति का अविकल रूप से अनुसरण करने का प्रयत्न किया जाता है और जिनके पाठ्यक्रम में आर्य ग्रन्थों की प्रमुख स्थान प्राप्त है। आश्रम या गुरुकुल में धनी–निर्धन व ऊँच–नीच का कोई भेद नही होता था। वेदशास्त्र आदि धर्मगन्थों के साथ साथ विविध विज्ञानों का पठन–पाठन भी उन प्राचीन आर्य शिक्षणालयों में हुआ करते थे। शिक्षक को समाज में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त था।
अध्यापक वर्ग की गणना ब्राह्मण वर्ग में की जाती थी और ब्राह्मण के लिए अंकिंचनता ही सर्वोच्च आदर्श था। बौद्ध और जैन धर्मों के उत्कर्ष के समय भारत में जो शिक्षणालय स्थापित हुए, वे प्राचीन आचार्यकुलों के एवं ऋषि आश्रमों से अनेक अंगों में अभिन्न थे। दूसरी सदी ईसा पूर्व में जब वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ, तब विशेष रूप से ऐसे शिक्षणालयों की स्थापना का प्रयास किया गया, जिनमें शिक्षा–विषयक वैदिक आदर्शों को ध्यान में रखा जाता था। तथापि, ये शिक्षण संस्थाएँ वैदिक युग के आचार्यकुलों से पूर्णतः सादृश्य नहीं रखती थीं। तुर्क अफगानों और मुगलों के शासन काल में भारत के शिक्षणालय प्राचीन आदर्शों से दूर हटते गये। उस समय न बौद्ध के शिक्षणालय प्राचीन आदर्शों के दूर हटते गये। उस समय न बौद्ध युग के विहार कायम रहे, न आर्य पद्धति के आश्रम। प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के पठन–पाठन की परम्परा तो इस काल में प्रायः लुप्त ही हो गयी, यद्यपि कतिपय विद्वान व्याकरण, ज्योतिष आदि वेदांगों, धर्मशास्त्रों तथा पुराण आदि को अपनी पाठशाला में पढाते रहे। अंग्रेज शासन के सूत्रपात के साथ भारत में जिन शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई उनमें वेदशास्त्र आदि का कोई स्थान नही था। उनका वातावरण आर्य धर्म व संस्कृति के प्रतिकूल था और उनका संचालन ऐसे व्यक्तियों के हाथ में था, जो शिक्षा की प्राचीन भारतीय परम्परा एवं आदर्शों से अनभिज्ञ थे। महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप की पुनः स्थापना के साथ–साथ प्राचीन आर्य शिक्षा पद्धति को भी पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से उन्होंने अनेक पाठशालाओं और विद्यालयों की स्थापना की। किन्तु इन शिक्षण संस्थाओं को पूर्णतः महर्षि दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक मन्तव्यों के अनुरूप विकसित नहीं किया जा सका। परिणामस्वरूप, उन्होंने स्वयं ही ऐसी अनेक पाठशालाओं को बंद कर दिया, जिनकी स्थापना आर्य शिक्षा पद्धति को ध्यान में रखकर की गई थी, परन्तु जिनका संचालन उनके आदर्शों

के अनुरूप नहीं हो पाया। इसके पश्चात् गत एक शताब्दी में आर्य समाज द्वारा स्थापित की गई विभिन्न शिक्षण संस्थाओं के समक्ष यह मूल विचार सदैव विद्यमान रहा कि भारत की प्राचीन आर्य शिक्षा पद्धति का पुनः स्थापन किया जाए तथा आर्य शिक्षणालयों में वेद–वेदाङ्गों की शिक्षा को प्रमुख स्थान प्रदान किया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आर्य समाज द्वारा स्थापित एवं संचालित शिक्षण संस्थाओं में प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा पद्धतियों के समन्वित रूप को अपनाया गया है।

शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज का प्रथम प्रयास

उन्नीसवीं सदी के मध्य में पुराने ढंग की जो शिक्षण संस्थाएं भारत में विद्यमान थी और ब्रिटिश सरकार तथा क्रिश्चियन मिशनरियों द्वारा जिन आधुनिक सभ्यता और पाश्चात्य संस्कृति वाली शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गयी थी, वे समय के प्रतिकूल तथा मदरसों तथा आवश्यकता पूर्ति करने में पूर्णतः असमर्थ थी। पुराने ढंग की पाठशालाओं में नये ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा को कोई स्थान प्राप्त नहीं था और उनके विद्यार्थी आधुनिक युग की नयी एवं प्रगतिशील प्रवृत्तियों से अपरिचित रह जाते थे। नये ढंग के स्कूलों और कॉलेजों में भारत की सांस्कृतिक परम्परा की सर्वथा उपेक्षा की जाती थी और उनके विद्यार्थी अपने धर्म, भाषा, संस्कृति तथा नैतिक मान्यताओं से विमुख होकर ईसाई धर्म तथा पाश्चात्य संस्कृति की ओर आकृष्ट होने लगे थे। भारत की शिक्षा विषयक आवश्यकताएं एक ऐसी शिक्षा पद्धति से पूरी हो सकती थी, जिसमें नये ज्ञान विज्ञान को समुचित स्थान प्राप्त हो और साथ ही भारतीय संस्कृति के प्रति विद्यार्थियों की आस्था भी कायम रहे। अपने देश के साहित्य, कला, भाषा एवं परम्पराओं से पूर्ण परिचय के साथ–साथ आधुनिक युग की उपलब्धियों तथा प्रवृत्तियों की जानकारी भी जिस पद्धति से प्राप्त हो सके, वही भारत की शिक्षा सम्बंधी तथा प्रवृत्तियों की जानकारी भी जिस पद्धति से प्राप्त हो सके, वही भारत की शिक्षा सम्बंधी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकती थी। साथ ही साथ, यह भी आवश्यक था कि शिक्षा को जनता के केवल एक वर्ग तक ही सीमित न रखा जाए। उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग में स्त्रियों की शिक्षा के लिए पुराने ढंग की कोई भी पाठशाला नही थी। मध्ययुग में स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम् की जिस मान्यता का प्रादुर्भाव हुआ था, उन्नीसवीं सदी के मध्य तक भी उसका पालन किया जा रहा था। पुरानें ढंग की जो पाठशालाएं उस समय विद्यमान थी, उनमें बालिकाओं को प्रविष्ट करने का तो प्रश्न ही नही था, केवल उच्च वर्ण के लोग ही उसमें प्रवेश पा सकते थे और उच्च वर्णों में भी प्रधानता ब्राह्मण बालक ही इन पाठशालाओं में संस्कृत भाषा तथा व्याकरण आदि का अध्ययन किया करते थे। सर्वसाधारण जनता को शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों का उस समय अभाव था। इसी का यह परिणाम था, कि भारत की बहुसंख्यक जनता उस समय सर्वथा निरक्षर थी। इस दशा में आर्य समाज द्वारा भारत के शिक्षा क्षेत्र में एक नवयुग का प्रारम्भ किया गया और ऐसी शिक्षण संस्थाएं स्थापित की गयी, जिनमें सभी वर्णों व जातियों के बालक प्रवेश पा सकते थे और जिनमें संस्कृत भाषा, वेदशास्त्र तथा प्राचीन साहित्य के साथ–साथ आधुनिक ज्ञान विज्ञान के अध्यापन की समुचित व्यवस्था थी। इस प्रकार की

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

शिक्षण संस्थाएं बालिकाओं के लिए भी पृथक रूप से खोली गयीं, साथ ही एक ऐसी नयी व प्रगतिशील शिक्षा पद्धति का सूत्रपात हुआ, जो भारत के लिए सर्वथा उपयुक्त थी। इस पद्धति के लिए आर्य समाज ने उन मन्तव्यों व आदर्शों का अनुसरण किया, जिनका प्रतिपादन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश तथा अन्य ग्रन्थों में किया था। जिन शिक्षण संस्थाओं का वर्तमान समय में आर्य समाज द्वारा संचालन किया जा रहा है, वे सब एक ही प्रकार की नही है। उनकी शिक्षा पद्धति का पाठविधि में बहुत भेद है। परन्तु उन सबकी एक आधारभूत विशेषता उनका आधार महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा–विषयक मन्तवय है। आर्य शिक्षण संस्थाओं में गुरूजनों द्वारा ही यह निर्धारित किया जाता है कि उनका ि ाष्य गुण–कर्म स्वाभाव के अनुसार किस वर्ण के योग्य है और विद्यार्थी तथा राजार्य सभा द्वारा उसे उसी वर्ण के अनुरूप कार्य करने की व्यवस्था की जाती थी। महात्मा मुंशी राम द्वारा बीसवी सदी के प्रारम्भ में स्थापित कांगड़ी ग्राम में स्थापित गुरुकुल इस पद्धति का उदाहरण है। आर्य शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा विषयक सिद्धान्तों का अनुकरण नहीं हो पाया। समाज में ऐसी शिक्षण संस्थाएं है जिनमें आर्य पाठविधि के अनुसार पठन–पाठन होता है। इन शिक्षण संस्थाओं में व्यवस्था, पाठन विधि तथा स्वरूप में अन्तर है। यद्यपि उनमें कुछ तों समान है फिर भी समानता की तुलना में भेद अधिक हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति

महर्षि दयानन्द सरस्वती वैदिक धर्म के वास्तविक स्परूप की पुनः स्थापना मानव समाज के हित और कल्याण तथा आर्यावर्त की उन्नति करने के लिए शिक्षा को बहुत महत्व देते हैं ये उनका मत था कि भारत की दुर्गति का एक महत्वपूर्ण कारण अविद्या और सत्यशास्त्रों तथा ग्रन्थों के पठन–पाठन का अभाव है। अंग्रेजों ने भारत में जिस शिक्षा पद्धति का सूत्रपात किया था, महर्षि उसे जनता के लिए हानिकारक समझते थे। साथ ही उनका मानना था कि संस्कृत पाठशाला में जो शिक्षा उस समय दी जाती थी, वह वेद वेदांग तथा सत्य शास्त्रों का सही ज्ञान नहीं करा पा रही थी। महर्षि दयानन्द का मन्तव्य था, कि शिक्षा सबके लिए है। समाज के किसी भी वर्ग को वे विद्या से वंचित नही रखना चाहते थे। स्त्रियों और शूद्रों को भी विद्या ग्रहण करने का अधिकारी मानते थे। उन्होंने लिखा है कि इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करें और विशेषकर राजा, क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्रजनों को भी विद्याभ्यास अवश्य करवाये। क्योंकि जो ब्रह्मण हैं, वे ही केवल विद्याभ्यास करें और यदि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नही हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने–पढ़ाने और क्षत्रियदि से जीविका प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के अधीन और क्षत्रियदि के आज्ञादाता ओर यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्रह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड में ही फंस जाते है और जब क्षत्रियदि विद्वान होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियदि विद्वानों के सामने पाखण्ड झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते हैं। जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्ड मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इसलिए सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

चाहिए। यजुर्वेद के *यथेमां वाचं कल्याणीभावदानि जनेभ्य ब्रहाराज न्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय* (2662) मन्त्र को उद्धृत कर महर्षि ने यह प्रतिपादित किया है कि परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने भृत्य वास्त्रियादि और अतिशूद्रादि भी वेदों का प्रकाश किया है। क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना चही चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों को पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिए निषेध है? तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाये है, वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किये हैं और जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढने–पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निबुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना–पढ़ाना व्यर्थ है और जो स्त्रियों के पढ़ने का विरोध करते हैं वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है। स्त्री शिक्षा और समाज में स्त्रियों की समान स्थिति का महर्षि ने प्रबल रूप से प्रतिपादन किया है। महर्षि के मत में वेदों का ज्ञान जैसे पुरूषों के लिए आवश्यक है वैसे ही स्त्रियों के लिए भी। दोनों के लिए समान रूप से ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर आचार्य के पथ प्रदर्शन में विद्यारम्भ करना आवश्यक है। शिक्षा विषयक उपने विचारों का निरूपण करते हुए गुरूकुल में अध्यापन करने वाले गुरूओं को विद्वान, धार्मिक व सदाचारी होना चाहिए। महार्षि दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा के जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था उनके अनुसार जो शिक्षण संस्थाएं स्थापित की जाती, वे उन पाठ ाालाओं, मदरसों, स्कूलों तथा कॉलेजों से बहुत भिन्न थी। वस्तुतः महर्षि ने शिक्षण संस्थाओं की एक ऐसी परिकल्पना संसार के सम्मुख प्रस्तुत की थी। जिसके द्वारा सभी समस्याओं का समाधान संभव था। शिक्षा पद्धति के साथ–साथ पठन–पाठन विधि प्रतिपादित की जिसे आर्य–पाठ विधि कहते हैं।

महर्षि जी के अनुसर बच्चों को अक्षर ज्ञान तो माता–पिता द्वारा घर पर ही करवा देना चाहिए, देवनागरी अक्षरों का भी और अन्य देशीय भाषा व भाषाओं के अक्षरों का भी। गुरुकुल में आकर छात्र–छात्राओं को सबसे पहले संस्कृत भाषा और व्याकरण का अध्ययन करना होगा। इसके लिए महर्षि ने पाणिनिमुनिक कृत शिक्षा और अष्टध्यायी का आश्रय लेना समुचित माना है। संस्कृत व्याकरण के अध्ययन के लिए उन्होंने सारस्वत, चन्द्रिका, सिद्धान्तकौमुदी आदि मध्यकालीन ग्रन्थों को उतना उपयोगी नहीं पाया जितना कि पाणिनी मुनि के व्याकरण को। उनके अनुसार पाणिनी की शिक्षा तथा अष्टाध्यायी और पंतजति के महाभाष्य से जितना बोध तीन वर्षों में प्राप्त किया जा सकता है उतना सारस्वत आदि से पचास वर्षों में भी सम्भव नहीं। केवल व्याकरण के लिए ही नहीं, अपितु अन्य ज्ञान विज्ञान के सम्बंध में भी महर्षि का यह मन्तवय है कि आर्य ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए। पठन–पाठन विधि के लिए भी महर्षि जी ने ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का ही प्रयोग करने पर बल दिया हैं।

दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूलों की स्थापना

8 नवम्बर, सन 1883 में दयानन्द सरस्वती की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूलों की स्थापना का उद्देश्य रखा गया तथा उपसमिति द्वारा धन एकत्र करने

के लिए जनता से जो अपील की गयी उसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया कि महर्षि किस प्रकार वेदों का प्रचार कर मानव समाज का हित और कल्याण करना चाहते थे। आर्यवर्त, जो आज अज्ञान, अन्धविश्वास और अनाचार के गर्त में गिरा हुआ है उसका यही कारण है कि वेदों की उदान्त शिक्षा को उसने भुला दिया है। हमारे लिए आवश्यक है कि महर्षि की स्मृति में एक ऐसा स्मारक स्थापित करें जो उनके महान व्यक्तित्व व कृतित्व के अनुरूप हो। इसी प्रयोजन से एक एंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना का निश्चय किया गया जिसमे पाश्चात्य संस्कृति के साथ–साथ पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान के प्रकाश में वेदों में संचित ज्ञानपर भी प्रकाश डाला जा सके। कुछ समय पश्चात लाला लालचन्द ने एंगलो वैदिक कांलेज की योजना का प्रारूप तैयार किया, जिसे विविध आर्य समाजों के पास विचारार्थ भेज दिया गया। इस प्रारूप में एंग्लो वैदिक कॉलेज की आवश्यकता का निरूपण निम्न प्रकार किया– हम एक ऐसी शिक्षणसंस्था की स्थापना करना चाहते हैं जिससे वर्तमान शिक्षा पद्धिति के गुण व लाभों को कायम रखते हुए उसकी त्रुटियों को दूर कर दिया गया हो। इस शिक्षण संस्था का मुख्य उद्देश्य यह होगा कि राष्ट्रभाषा और अन्य लोक भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहित कर शिक्षित वर्ग और अशिक्षित जनता के बीच के भेद को दूर कर सब को परस्पर सम्बद्ध कर दिया जाए, प्राचीन संस्कृत के अध्ययन पर जोर देकर नैतिक और अध्यात्मिक ज्ञान का प्रसाद किया जाए, अनुशासित जीवनचर्या द्वारा शक्ति सम्पन्न व सही आदतों के निर्माण में सहायता की जाए, सम्पन्न व सही आदतों के निर्माण में सहायता की जाए, अनुशासित जीवनचर्या द्वारा शक्ति अंग्रेजी साहित्य के गम्भीर परिचय को प्रोत्साहित किया जाए और भौतिक व व्यवहारिक विज्ञानों के ज्ञान के प्रसार द्वारा देश की भौतिक उन्नति में सहायक हुआ जाए।

आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं के विविध प्रकार

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति तथा पठन–पाठन विधि को सम्मुख रखकर या उन्हें क्रियावित करने के प्रयोजन से आर्य समाज द्वारा जो बहुत सी शिक्षण संस्थाएं स्थापित की गयी थी उन सब का स्वरूप एक जैसा नहीं है। उनकी व्यवस्था, पाठविधि तथा स्वरूप में बहुत अन्तर है। यद्यपि उनमें कुछ बातें समान भी हैं पर समानता की तुलना में उनके भेद अधिक है।

जिन शिक्षण संस्थाओं के साथ गुरूकुल नाम जुड़ा है उनकी संख्या लगभग 150 है। महर्षि दयानन्द ने स्वयं जिन शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की थी, उनके लिए उन्होंने गुरुकुल नाम का प्रयोग नहीं किया था। पर उन्होंने जिस शिक्षा पद्धति का अपने ग्रंथों में प्रतिपादन किया था और प्राचीन भारत में पठन–पाठन के लिए जिस प्रकार के आरण्यक आश्रम व आचार्य विद्यमान थे, उन्हें दृष्टि में रखकर आर्य समाज द्वारा गुरुकुलों की स्थापना की परम्परा का प्रारम्भ हुआ। इनमें महर्षि के शिक्षा विषय मन्तव्यों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया गया और आंशिक रूप से ये प्रयन्न सफल भी हुए। कांगडी आदि के गुरूकुल नगरों से दूर एकान्त प्रदेश में खोले गये थे और उनमें सब विद्यार्थियों के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाता था। धनी और निर्धन, ब्राह्मण और शूद्र आदि का कोई भी भेद न कर सब विद्यार्थी एक

साथ रहते थे, एक जैसे वस्त्र पहनते थे, एक समान भोजन करते थे तथा माता–पिता से स्वतंत्र रूप से नहीं मिल सकते थे। अवकाश के दिनों में भी अपने घर नही जा सकते थे। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं हो पाता था कि वे किस जाति के हैं या उनके परिवार की सामाजिक व आर्थिक स्थिति क्या है। उनके पाठ्यक्रम के आर्ष ग्रन्थों को मुख्य स्थान दिया गया था। गुरूकुल द्वारा अनेक काव्यों तथा मनुस्मृति आदि के संशोधित संस्करण भी प्रकाशित किए गये थे। ब्रह्मचारियों का जीवन तपस्यामय तथा रहन–सहन बहुत सादा होता था। उनके सिर और पैर नंगे रहते थे और शहरों के दूषित वातावरण के प्रभाव से उन्हें मुक्त रखा जाता था। आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं में डी०ए०वी० स्कूलों और कॉलेजों का महत्व सबसे अधिक है। इनकी स्थापना का प्रारम्भ महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक के रूप में किया गया था और इनका उद्देश्य वेद–शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन तथा महर्षि के शिक्षा विषयक मन्तव्यों को क्रियान्वित करना निर्धारित किया गया था पर समय की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर उनमें उस सामान्य शिक्षा की व्यवस्था की गयी, जिसकी जनता में मांग थी। ऐसे भी अनेक कन्या गुरुकुल हैं जिनमें सरकारी शिक्षणालयों के पाठ्यक्रमों को ही प्रयोग में लाला जाता है। इस प्रकार वर्तमान समय के गुरुकुलों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, विश्वविद्यालय, अनुदान आयोग द्वारा जिसे युनिवर्सिटी की स्थिति स्वीकृत है। गुरुकुल भैसवाल (हरियाणा) तथा कन्या गुरुकुल देहरादून आदि अनेक शिक्षण संस्थाएं इसके साथ सम्बद्ध है और उसी की परीक्षाएं दिलाती हैं। गुरूकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन, सरकार ने इसकी युनिवर्सिटी की स्थिति स्वीकृत नही की है, पर इस द्वारा अपनी डिग्रियां दी जाती है, जिन्हें सरकार से मान्यता प्राप्त है। कतिपय अन्य गुरूकुल भी इस विश्वविद्यालय की परीक्षाएं दिलाते हैं। श्रीमदयानन्द आर्य विद्यापीठ, झज्जर (हरियाणा) गुरुकुल झज्जर में स्थित इस विद्यापीठ द्वारा ऐसा पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है जो महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षा विषयक सिद्धान्तों तथा पठन–पाठन विधि के साथ मेल रखता है। अनेक गुरुकुल इस विद्यापीड के साथ सम्बद्धती है। इस विद्यापीड की परीक्षाओं तथा उपाधियों को अनेक सरकारी विश्वविद्यालयों तथा सरकारों द्वारा मान्यता प्राप्त है। सरकारी तथा क्रिश्चियन शिक्षणालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को अपने धर्म एंव संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्राप्त नही होता था और वे निरन्तर पाश्चात्य प्रभाव में आते जाते थे। संस्कृत और आर्य भाषा (हिन्दी) की पढ़ाई की उनमें समुचित व्यवस्था नही थी और अपने परम्परागत धर्म का ज्ञान प्राप्त करने का उन्हें अवसर भी नहीं मिलता था। इस स्थिति में आर्य समाज द्वारा जो दयानन्द एंग्लो वैदिक शिक्षण संस्थाएं स्थापित की गयीं वे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करती थी। उनमें संस्कृत और हिन्दी की पढाई की समुचित व्यवस्था थी और धर्म शिक्षा को भी व्यवस्था थी। स्कूलों व कालेजों के साथ छात्रावासों का भी निर्माण किया गया था जिनमें निवास करने वाले विद्यार्थी अनुशासित जीवन व्यतीत करते थे। उन्हें भी अपने धर्म व संस्कृति से परिचित होने का अवसर मिलता था। आर्य समाज के

सम्पर्क में रहने के कारण वे अपने देश की दुर्दशा का भी अनुभव करने लगे थे और उनमें राष्ट्रीयता देशभक्ति तथा धर्म प्रेम की भावनाएं भी उद्‌बद्ध होने लगती थी। इस दृष्टि से डी०ए०वी० स्कूलों को राष्ट्रीय की संज्ञा भी दी जाती थी। दयानन्द एंग्लो वैदिक शिक्षण संस्थाओं का कार्य क्षेत्र सामान्य शिक्षा तक ही सीमित नहीं था।

निष्कर्ष

शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज की भूमिका केवल शिक्षण संस्थाओं की स्थापना तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने भारतीय शिक्षा को वैचारिक दिशा, सांस्कृतिक आधार और सामाजिक उद्देश्य भी प्रदान किए। आर्य समाज ने उस समय की दोहरी शैक्षिक समस्या एक ओर पारम्परिक पाठशालाओं की सीमाएँ और दूसरी ओर औपनिवेशिक शिक्षा की सांस्कृतिक उपेक्षा के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा–दर्शन ने वैदिक ज्ञान, नैतिकता, अनुशासन, चरित्र निर्माण तथा समानता (स्त्री, शूद्र एवं वंचित वर्गों की शिक्षा) को शिक्षा के केंद्र में रखा। गुरुकुलों के माध्यम से प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के आदर्शों को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न हुआ, वहीं डी.ए.वी. संस्थानों ने आधुनिक विषयों, विज्ञान तथा अंग्रेजी शिक्षा को अपनाते हुए भारतीय भाषा–संस्कृति और धर्म–शिक्षा से जुड़ाव बनाए रखा। इन संस्थानों ने समाज में राष्ट्रीय चेतना, देशभक्ति, सामाजिक सुधार, तथा सांस्कृतिक आत्मगौरव के भाव को विकसित करने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार, आर्य समाज का शैक्षिक आंदोलन भारतीय शिक्षा के आधुनिकीकरण के साथ–साथ उसके स्वदेशीकरण का भी सशक्त माध्यम बना और उसने आधुनिक भारत की शिक्षा–व्यवस्था को वैचारिक, संस्थागत एवं सामाजिक स्तर पर गहराई से प्रभावित किया।

संदर्भ सूची

1. दयानंद सरस्वती. (1883). *सत्यार्थ प्रकाश.* नई दिल्लीः आर्य प्रतिनिधि सभा।
2. जोन्स, के. डब्ल्यू. (1976). *आर्य धर्मः उन्नीसवीं सदी के पंजाब में हिंदू चेतना.* बर्कलेः यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
3. लाजपत राय, लाला. (1915). *आर्य समाजः उत्पत्ति, सिद्धांत और गतिविधियाँ.* लंदनः लॉन्गमैन्स, ग्रीन एंड कंपनी।
4. मजूमदार, आर. सी. (1967). *भारतीय संस्कृति का इतिहास.* मुंबईः भारतीय विद्या भवन।
5. शर्मा, आर. एस. (2005). *भारत का प्राचीन इतिहास.* नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. स्पीयर, पी. (1990). *भारत का इतिहास (खंड–2).* नई दिल्लीः पेंगुइन बुक्स।
7. अग्रवाल, जे. सी. (2010). *भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास.* नई दिल्लीः शिप्रा पब्लिकेशंस।
8. भटनागर, एस. (1996). *आर्य समाज और भारतीय शिक्षा.* नई दिल्लीः डीप एंड डीप पब्लिकेशंस।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

9. गोयल, डी. आर. (1987). *आर्य समाज और आधुनिक भारत का निर्माण.* नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस।
10. मुखर्जी, एस. एन. (1976). *भारत में शिक्षा: इतिहास और समस्याएँ.* बड़ौदा: आचार्य बुक डिपो।